Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. 16, Issue No. 2, February-2019, ISSN 2230-7540

राजपूत विद्रोह (मारवाड़ तथा मेवाड़)

Kusum Lata*

Extension Lecturer in History, Government College, Meham, Haryana

सारांश – आज़ादी की पहली लड़ाई यानी साल 1857 का विद्रोह भारतीय इतिहास के लिए कई मायनों में महत्वपूर्ण है। इस संघर्ष के साथ ही भारत में मध्यकालीन दौर का अंत और नए युग की शुरुआत हुई, जिसे आधुनिक काल कहा गया।

----------X----------

राजपूतों ने साम्राज्य के विकास में बड़ी सहायता की थी। औरंगजेब उनकी मित्रता का मूल्य समझने में असफल रहा। उसने उनके प्रति राज्य की नीति में परिवर्तन कर दिया। अम्बर के राजा जयसिंह को वह अपनी नीति के विरुद्ध राजपूत विरोध का एक प्रबल नेता समझता था। उसे (राजा जय सिंह को) 1667 ई. में दक्कन में अपने जीवन से हाथ धोना पड़ा।

इसके बाद एक से अधिक कारणों से मारवाड़ की विजय की ओर उसका ध्यान आकृष्ट हुआ। इसका युद्धकौशल की दृष्टि से एक महत्त्वपूर्ण स्थान था, क्योंकि मुग़ल राजधानी से पश्चिमी भारत के समृद्ध नगरों एवं बन्दरगाहों के कुछ सैनिक एवं व्यापारिक रास्तों पर इसका नियंत्रण था। उस समय उत्तर भारत में एक प्रबल सैनिक राज्य के रूप में इसकी स्थिति औरंगजेब को फूटी आँखों भी नहीं सुहाती थी। उसे संदेह था कि इसका प्रधान जसवन्त सिंह, जो पहले दारा शुकोह के दल का था, उसकी नीति के विरोधियों का नेता बनकर खड़ा हो सकता है।

शीघ्र ही बादशाह को मारवाड़ के विरुद्ध अपनी योजनाएँ कार्यान्वित करने का अनुकूल अवसर मिल गया। राजा जसवन्त सिंह खैबर की घाटी और पेशावर जिले में मुगल सीमान्त दस्तों का संचालन कर रहा था। इसी समय 10 दिसम्बर, 1678 ई. को जमरूद में उसकी मृत्यु हो गयी। इस समाचार को सुनते ही औरंगजेब ने तुरंत मारवाड़ को मिला लेने के लिए कदम उठाया। उसने वहाँ अपने अफसरों को फौजदार, किलादार कोतवाल एवं अमीन के रूप में नियुक्त कर लिया तथा उसे सीधे मुग़ल शासन में ले आया। राठौर अपने राजा की मृत्यु से व्यग्र एवं त्रस्त हो जाने के कारण संयुक्त राष्ट्रीय प्रतिरोध उपस्थित करने में असफल रहे। मई के महीने में नागौर के नायक तथा जसवन्त के पोते (भतीजे के बेटे) इन्द्र सिंह राठौर को उत्तराधिकार शुल्क के रूप में छत्तीस लाख रुपये देने पर जोधपुर का राणा मान लिया गया। परन्तु मुग़ल अफ़सरों से घिरा हुआ वह केवल नाम का शासक रहा।

इस प्रकार बादशाह की नीति सफल प्रतीत होने लगी। परन्तु मारवाड़ वास्तव में अधीन नहीं किया गया था। उस राज्य का प्रत्येक राजपूत गृह बादशाह के तीव्र आघात का अन्त करने की कृतसंकल्प हो गया। अब शाही नीति को बाधा पहुँचाने तथा अन्त में उसे पराजित करने को एक नया तत्त्व घटनास्थल में आ घुसा। इधर फरवरी, 1679 ई. में जसवन्त की मृत्यु के पश्चात् लाहौर में उसके दो पुत्रों का जन्म हो चुका था। एक तो जन्म के तुरंत बाद मर गया; परन्तु दूसरा, जिसका नाम अजीत सिंह था, जीवित रहा। उसके पिता के प्रमुख अनुगामी उसे दिल्ली ले आये। उन्होंने औरंगजेब से उसे मृतक राजा का उत्तराधिकारी स्वीकार करने का अनुरोध किया। परन्तु बादशाह ने उसका पोषण अपने अन्तःपुर में करने का प्रस्ताव किया अथवा एक अन्य समकालीन विवरण के अनुसार अजीत को जोधपुर का राजसिंहासन उसके मुसलमान बन जाने की शर्त पर देने का वादा किया गया।

बादशाह के इस असाधारण प्रस्ताव से राठौरों की भावनाओं पर कठोर आघात पहुँचा। उन्होंने इन शर्तों को स्वीकार करने के बदले अपने प्राणों की आहुति देने की प्रतिज्ञा की। परन्तु शाही दल की संगठित शक्ति के विरुद्ध केवल भक्ति एवं अपरिणामदर्शी साहस किसी काम के नहीं हो सकते थे।

संकट के इस क्षण में राठौरों के सौभाग्य से उन्हें दुर्गादास (जसवन्त के मंत्री आसकरन का पुत्र) जैसा योग्य नेता मिल गया। जो राठौर वीरता का पुष्प था। राजस्थान के इतिहास में दुर्गादास को भयानक बाधाओं के होने पर भी अपने देश के प्रति निःस्वार्थ भक्ति के लिए एक अमर व्यक्ति माना जाता है, जो उचित ही है। उस स्थिर हृदय को मुग़लों का सोना

www.ignited.in

सत्पथ से न डिगा सका, मुग़लों के शस्त्र नहीं डरा सके। उसने एक राजपूत सैनिक के प्रबल आघात एंव संगठन-शक्ति के विरल संयोग का प्रदर्शन किया और राठौरों के प्रति वह करीब-करीब अकेला था।

एक शाही फौज रानियों तथा अजीतसिंह को पकड़ने के लिए भेजी गयी। सत्य का वरण करने वाले राजपूतों की एक टुकड़ी उस पर टूट पड़ी। फैली हुई गड़बड़ी से लाभ उठा कर दुर्गादास इच्छित शिकारों को पुरूषों के परिधान में घोड़े पर लेकर भाग चला। उसके नौ मील जाने पर शाही दल उस तक पहुँच गया। परन्तु यहाँ रणछोड़दास जोधा के अधीन राजपूतों की एक छोटी टुकड़ी ने जब तक हो सका तब तक पीछा करने वालों को रोकने का प्रयत्न किया तथा दुर्गादास रानियों एंव अजीत के साथ 23 जुलाई, 1679 ई. को जोधपुर पहुँचने में समर्थ हुआ। जब औरंगजेब ने विभिन्न प्रांतों से बहुत सी फौजें मँगवाई और तीनों शहज़ादों-मुअज्जूम, आज़म एंव अकबर-को सेना के भिन्न-भिन्न दस्तों का कमान दे दिया गया। वह स्वंय सैनिक कार्यवाइयों का निर्देशन करने के लिए अगस्त, 1679 ई. में अजमेर गया। जोधपुर को जीत कर वहाँ लूटपाट मचायी गयी।

परन्तु मुग़ल बादशाह की इस आक्रमणकारी नीति के कारण मेवाड़ के वीर सिसोदिया मारवाड़ के निराश राठौरों से जा मिले। औरंगजेब ने तुरंत मेवाड़ पर आक्रमण कर दिया। राणा ने मुग़लों की प्रबलतर शक्ति का सामना करना अनुचित समझा। इसलिए वह मेवाड़ के नगरों तथा पुरवों को त्यागकर अपनी सारी प्रजा के साथ पहाड़ी किलों में चला गया। नीचे के मैदान बंजर पड़ गये। मुग़लों ने सुगमता से चित्तौड़ पर अधिकार कर लिया। सफलता के लिए निश्चित होकर बादशाह अकबर के अधीन एक प्रबल सेना चित्तौड़ में छोड़ अजमेर के लिए चल पड़ा। परन्तु शीघ्र ही उसकी आँखें खुल गयी। राजपूत छिप कर युद्ध करते रहे। वे मुग़लों की चौकियों पर इतने अधिक साहस के साथ टूट पड़ते थे कि मुग़ल चौकियों का कमान स्वीकार करने वाला कोई न रहा; एक-के-बाद दूसरे कप्तान इस खतरनाक सम्मान को बहाने बनाकर अस्वीकार करने लगे। अपनी सफलताओं से प्रोत्साहित होकर राजपूतों ने मई, 1680 ई. में शाहजादा अकबर के अधीन रहने वाली मुगल सेना पर हमला कर दिया। बादशाह ने इस पराजय के लिए शाहजादा अकबर को उत्तरदायी ठहराया। उसने चित्तौड़ की सेना को शाहजादा आजूम के अधीन कर दिया तथा अकबर को मारवाड़ भेज दिया।

शाहजादा अकबर ने अपने हटाये जाने के अपमान की पीड़ा का तीव्र अनुभव किया। वह राजपूतों की योग्यता, उनके साथ युद्ध करते समय अच्छी तरह समझ ही गया होगा। अब यह उनके साथ मिलकर अपने पिता से दिल्ली का राजमुकुट छीनने के सपने देखने लगा। राजपूत नायकों ने उसे बतलाया कि किस प्रकार उसके पिता की नीति से मुगलसाम्राज्य की स्थिरता नष्ट हो रही थी। उन्होनें दो सबसे महान् राजपूत जातियों सिसोदिया एंव राठौर, की सैनिक शक्ति से उसकी सहायता करने की प्रतिज्ञा की। इस प्रकार उनकी आशा थी कि दिल्ली के राजसिंहासन पर एक सच्चा राष्ट्रीय राजा बैठा सकेगे। लगभग सत्तर हजार व्यक्तियों की एक सेना लेकर जिसमें राजपूताना का सर्वोत्कृष्ट रक्त था, शाहजादा अकबर 15 जनवरी, 1681 ई. को अजमेर के निकट पहुँचा। उस समय औरंगजेब की स्थिति संकटपूर्ण थी क्योंकि उसकी सेना की दो प्रमुख टुकड़ियां चित्तौड एंव राजसमुद्र झील के निकट थी। यदि शाहजादा तुरंत इस सुअवसर का उपयोग कर लेता, तो बादशाह दिक्कत में पड़ सकता था। परन्तु उसने आलस्य एंव विषय-सुख में अपना समय गंवा दिया और इस प्रकार अपने चतुर पिता को अपनी प्रतिरक्षा के लिए तैयारियाँ करने का अवसर दे दिया। बादशाह ने अपने विद्रोही पुत्र के पास एक पत्र लिखा। उसने ऐसा प्रबंध किया जिसमें वह पत्र राजपूतों के हाथ पड़ जाए। इससे अकबर के मित्रों को यह विश्वास हो गया कि मुग़ल शाहजादा उनके साथ छल कर रहा है। बादशाह की यह चतुराईपूर्ण युक्ति सफल सिद्ध हुई। अकबर के राजपूत मित्रों ने विश्वासघात का संदेह कर, उसे त्याग दिया तथा वह शीघ्रता से अपनी जान बचाकर राजपूतों के पास भाग गया। परन्तु राजपूतों को तुरंत अपने प्रति किये गए छल का पता चल गया। वीर राठौर नायक दुर्गादास को शाहजादे के निर्दोष होने का पता चल गया। उसने वीरता के साथ उसे अपने पिता के प्रतिरोधों से बचाया तथा उसे खानदेश एवं बगलाना होकर मराठा राजा शम्भूजी के दरबार में पहुँचा दिया। पर शिवाजी का विलासी उत्तराधिकारी इस भगोडे मुग़ल शाहजादे को कोई कार्यसाधक सहायता न दे सका। इसका हिन्दू-मुस्लिम सामंजस्य और मेल पर आधारित भारतीय साम्राज्य का स्वप्न निरर्थक ही रहा। लगभग छः वर्षों के बाद निराश मुग़ल शाहजादा फारस चला गया। वहीं 1704 ई. में उसकी मृत्यु हुई।

शाहजादा अकबर के विद्रोह से दिल्ली का बादशाह बदला नहीं जा सका। परन्तु इससे मेवाड़ के राणा को बहुत चैन मिला। किन्तु मुगलों के विरुद्ध उसकी क्षणिक सफलता से उसकी प्रजा को बहुत कष्ट हुआ। मुगलों को भी काफी तकलीफ हुई तथा उन्हे राजपूतों के विरुद्ध किए गए कार्यों से कोई निश्चित लाभ नहीं हो सका। इन विचारों से बादशाह तथा राजसिंह के पुत्र एंव उत्तराधिकारी राणा जयसिंह ने जून, 1681 ई. में संधि कर ली। राणा ने जजिया के बदले कुछ जिले दे दिये तथा मुग़ल मेवाड़ से हट गये। परन्तु मारवाड़ के साथ सम्मानपूर्ण शर्तों पर संधि हुई और उससे तीस वर्षीय युद्ध करते रहे।

उन्होंने मुगल चौकियों को तंग किया। इसलिए मुगल अफसरों को उसके (दुर्गादास के) आक्रमण से अपनी रक्षा करने के लिए अपने शत्रु को विवश होकर चौथ देना पड़ा। युद्ध चलता ही रहा। अंत में औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र तथा उत्तराधिकारी बहादुर शाह प्रथम ने 1709 ई. में अजीत सिंह को मारवाड़ का राणा स्वीकार कर लिया।

औरंगजेब के राजपूत युद्धों के परिणाम, उसके साम्राज्य के लिए विनाशकारी सिद्ध हुए। हजारों व्यक्तियों की बलि चढ़ायी गयी तथा मरूभूमि पर अपार धन नष्ट किया गया। मगर बादशाह को कोई स्थायी सफलता न मिली। शाही प्रतिष्ठा के लिए यह परिणाम तो हानिकारक था ही, परन्तु इसके भौतिक फल और भी बुरे निकले। औरंगजेब के लिए राजपूतों की शत्रुता को उभाड़ना राजनैतिक अविवेक का काम था। राजपूत अब तक साम्राज्य के मित्र थे। परन्तु औरंगजेब को दक्कन के प्रति ध्वंसकारी युद्धों में अथवा उत्तर-पश्चिम सीमा में रखने के महत्त्वपूर्ण कार्य में वीर नायकों और सैनिकों की अनुरक्त सेवा से हाथ धोना पड़ा।

राजपूतों की उत्पत्ति:-

प्राचीन क्षत्रियों से:-गौरी शंकर ओझा जैसे इतिहासकार राजपूतों को प्राचीन क्षत्रियों से उत्पन्न मानते हैं इनके अनुसार प्राचीन क्षत्रिय ही आगे चलकर राजपूतों के नाम से प्रसिद्ध हो गये।

विदेशी उत्पत्तिः-कुछ विदेशी इतिहासकार जैसे-कर्नलययड एवं स्मिथ आदि लोग विदेशी जातियों शक, कुषाण, सीथियन आदि से इनकी उत्पत्ति मानते हैं।

लक्ष्मण से:- प्रतिहारों के अभिलेखों में इनकी उत्पत्ति लक्ष्मण से दर्शायी गई है। इनके अनुसार लक्ष्मण ने जैसे द्वारपाल के रूप में रामचन्द्र की रक्षा की थी उसी तरह प्रतिहारों ने आखों से भारत की। प्रतिहार का अर्थ ही द्वारपाल होता है।

अग्निकुण्ड सिद्धान्त से:-चन्द्रबरदाई द्वारा लिखी पुस्तक पृथ्वीराज रासो में अग्निकुण्ड सिद्धान्त का उल्लेख प्राप्त होता है। यह कहानी के नवसहशांक चरित सूर्यमल के वंश भास्कर आदि में भी प्राप्त होता है।

पृथ्वी राज रासो के अनुसार गौतम अगस्त, वशिष्ठ आदि तीनों में आबू पर्वत पर एक यज्ञ का आयोजन किया। इस यज्ञ से उन्होंने तीन योद्धाओं प्रतिहार, चालुक्य एवं परमार को पैदा किया। बाद में चार भुजाओं वाले एक अन्य योद्धा चाहवान की उत्पत्ति की। इस प्रकार अग्नि कुण्ड सिद्धान्त से कुल चार राजपूतों की उत्पत्ति दर्शायी गयी है। अग्निकुंड सिद्धान्त का विशेष महत्व है क्योंकि अग्नि पवित्रता का प्रतीक है। ऐसा लगता है कि कुछ विदेशी लोगों को भी अग्नि के माध्यम से पवित्र कर राजपूतों में शामिल कर लिया गया।

त्रिपक्षीय संघर्ष:- हर्ष की मृत्यु के बाद कन्नौज पर अधिकार को लेकर प्रतिहारों, पालों और राष्ट्रकूटों के बीच 8वीं शताब्दी के मध्य से 10वी शताब्दी के मध्य एक संघर्ष प्रारम्भ होता है जो भारतीय इतिहास में त्रिपक्षीय संघर्ष के नाम से विख्यात है। इस संघर्ष में अन्ततः प्रतिहारों की विजय होती है तथा उनका कन्नौज पर अधिकार स्थापित हो जाता है। प्रतिहारों के पतन के बाद कन्नौज पर गहड़वालों का आधिपत्य हो जाता हे। ये काशी नरेश के नाम से विख्यात थे। प्रतिहारों के पतन के बाद उत्तर भारत में कुछ अन्य छिटपुट राजवंशों का उदय भी होता है। इनमें दिल्ली तथा अजमेर के चाहमान, बुन्देलखण्ड के चन्देल मालवा के परमार, और त्रिपुरी के कल्चुरी शामिल थे। इन सभी राजवंशों में परमार, राष्ट्रकूटों के सामन्त माने जाते हैं जबकि शेष अन्य प्रतिहारों के।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. गिरीश चंद्र द्विवेदी, द जाट्स - मुगल साम्राज्य में उनकी भूमिका, डॉ वीर सिंह द्वारा एड। दिल्ली, 2003, पी।17
2. गिरीश चंद्र द्विवेदी, द जाट्स - मुगल साम्राज्य में उनकी भूमिका, डॉ वीर सिंह द्वारा एड। दिल्ली, 2003, पी।22
3. अली मुहम्मद खान द्वारा मिरेट-ए-अहमदीर को ऊपर उठाएं मनुची) स्टोरिया, II, पृष्ठ144
4. गिरीश चंद्र द्विवेदी, द जाट्स - मुगल साम्राज्य में उनकी भूमिका, डॉ वीर सिंह द्वारा एड। दिल्ली, 2003, पी।22
5. गिरीश चंद्र द्विवेदी, द जाट्स - मुगल साम्राज्य में उनकी भूमिका, डॉ वीर सिंह द्वारा एड। दिल्ली, 2003, पी।22
6. गिरीश चंद्र द्विवेदी, द जाट्स - मुगल साम्राज्य में उनकी भूमिका, डॉ वीर सिंह द्वारा एड। दिल्ली, 2003, पी।23

7. गिरीश चंद्र द्विवेदी, द जाट्स - मुगल साम्राज्य में उनकी भूमिका, डॉ वीर सिंह द्वारा एड। दिल्ली, 2003, पी।17

8. इरफान हबीब, मुगल भारत की कृषि प्रणाली) बॉम्बे 1 : (63 9, पी।318

9. शाह वालुल्लाह दहलवी के सियासी मुकुब्बत, (ए। निजामी द्वारा पर्स टेक्स्ट और उर्दू ट्रांस, दूसरा संस्करण, दिल्ली, पृष्ठ 2

Corresponding Author

Kusum Lata*

Extension Lecturer in History, Government College, Meham, Haryana

kusumlata1002@gmail.com